परिशिष्ट

अशोक के अभिलेखों का महत्त्व

अशोक के अभिलेख भारत के प्राचीनतम एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलेख हैं। सैन्धव युग और अशोक के शासनकाल के मध्य का कोई अभिलेख अभी तक उपलब्ध नहीं है, इसलिए याथार्थिक दृष्टि से भारत के ऐतिहासिक युग का प्रारंभ अभिलेखों से ही होता है। इनका महत्त्व अन्य अनेक दृष्टियों से भी है जिन पर हम यहाँ विचार करेंगे। प्रस्तुत पुस्तक में अन्य राजाओं और युगों के अभिलेखों का अध्ययन करते समय हमने प्रत्येक लेख के महत्त्व पर अन्त में अलग से विचार किया है, परन्तु अशोक के लेख संख्या में बहुत अधिक ही नहीं हैं (उसके अब तक ज्ञात अभिलेखों की कुल संख्या १६१ है) वरन् ये परस्पर घनिष्ठतः सम्बन्धित भी हैं। अतः हमने उसके जिन अभिलेखों का इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप से अध्ययन किया है उनके अपने महत्त्व को उनके अन्त में प्रदत्त टिप्पणियों में बता दिया है; यहाँ हम उसके समस्त अभिलेखों को समवेत लेते हुए उनके महत्त्व का विवरण देंगे। लेकिन उसके विविध अभिलेखों की टिप्पणियों में जिन समस्याओं पर विस्तार से विचार किया गया है उनका यहाँ उल्लेख मात्र किया गया है। इन समस्याओं के विस्तृत अध्ययन के लिए पाठक 'कोष्ठकों' में उल्लिखित अभिलेखों के मूलपाठ व टिप्पणियों से लाभ उठा सकते हैं। यहाँ हमारा आशय मात्र यह दिखाना है कि अशोक के अभिलेख समवेतरूपेण किन-किन दृष्टियों से महत्त्व पूर्ण हैं।

अशोक के परिवार, व्यक्तिगत जीवन व तिथिक्रम विषयक महत्त्व—अशोक के अभिलेख स्वयं उसके परिवार एवं व्यक्तिगत जीवन पर प्रामाणिक सूचनाएँ देते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि उसके बहुत से भाई-बहिन थे जिनके अपने अन्तः पुर थे (५ वाँ शि० ले०) तथा उसकी कम-से-कम दो रानियाँ थीं क्योंकि प्रयाग-स्तम्भ के 'रानी के लेख' में राजकुमार तीवर की माता कारूवाकी को द्वितीय रानी कहा गया है। सप्तम स्त० ले० में प्रधानरानी (देविनं) अवरोधनों (ओलोधनसि) रानियों (दालकानां) व राजकुमारों (देविकुमालंनं) का उल्लेख है। ल० शि ले० के दाक्षिणात्य संस्करणों में उल्लिखित 'आर्यपुत्र' व जौगड़ व धौली पृथक् शि० ले० के कुमार भी उसके भाई या पुत्र होंगे। उसके लेखों में उसके अपने व्यक्तिगत नाम 'अशोक' (गुजर्रा व मास्की ल० शि० ले०) तथा 'प्रियदर्शी' बताए गए हैं तथा उपाधियाँ 'देवानांप्रिय' और 'राजा'। इन अभिलेखों से उसका व्यक्तिगत इतिहास भी ज्ञात होता है। इनसे स्पष्ट है कि उसने आठवें वर्ष कलिंग जीता (१३ वां शि०

ले०) जिसकी भीषणता से अनुतप्त होकर उसने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बौद्ध उपासक बनने के बाद पहिले एक साल तक उसने कम पराक्रम किया। दूसरे वर्ष से उसने तीव्र पराक्रम प्रारंभ किया और दसवें वर्ष में सम्बोधि की यात्रा की (अष्टम शि० ले०)। स्पष्टतः उसी वर्ष, निश्चय ही ल० शि० ले० जारी करने के २५६ दिन पूर्व, उसने बुद्ध के अवशेष मञ्चारूढ़ कराए। ११ वें वर्ष उसने ल० शि० ले० जारी किया और बारहवें वर्ष आजीवकों को दो गुफाएँ दान दीं तथा प्रथम चार शि० ले० जारी किए। १३ वें वर्ष उसने धर्म महामात्रों की नियुक्ति की। १४ वें वर्ष संभवतः शेष शि० ले० जारी किए एवं कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दुगना कराया (निगालीसागर स्त० ले०)। १९ वें वर्ष उसने आजीवकों को नई गुफाएँ दान दीं। २० वें वर्ष कनकमुनि बुद्ध के स्तूप (निगालीसागर स्त० ले०) व लुम्बिनी की यात्रा की (रुम्मिनदेई स्त० ले०)। २६ वें वर्ष में उसने प्रथम छः स्तम्भ-लेख लिखवाए और २७ वें वर्ष ७ वाँ स्तम्भ-लेख

साम्राज्य की सीमाएँ—अशोक के अभिलेखों से उसके साम्राज्य के विस्तार का ज्ञान होता है। इनके प्राप्ति-स्थलों से निश्चित होता है कि उसका साम्राज्य उत्तर में कालसी एवं नेपाल की तराई, दक्षिण में ब्रह्मगिरि-सिद्धपुर आदि स्थलों, पूर्व में कलिंग, पश्चिम में जूनागढ़ तथा उत्तर-पश्चिम में कन्धार तक विस्तृत था। उसके शार-ए-कुना (कन्धार) लेख से यूनानी साक्ष्य की यह सूचना प्रश्नातीतरूपेण प्रमाणित हो जाती है कि सेल्युकस ने काबुल, कन्धार, हिरात व बलूचिस्तान प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्य को दे दिए थे। अशोक के अभिलेखों में उसके पड़ोसी यूनानी राज्यों व सुदूर दक्षिण के स्वतन्त्र भारतीय राज्यों की जो सूचियाँ मिलती हैं (२ रा शि० ले० ; १३ वाँ शि० ले०) उसने भी उसके साम्राज्य की यही सीमाएँ निर्धारित होती हैं।

प्रशासन संबंधी सूचनाएँ—अशोक के अभिलेख साम्राज्य के प्रशासन पर रोचक प्रकाश देते हैं। उसका साम्राज्य एक केन्द्रीभूत साम्राज्य था। अपने लेखों में कुछ जातियों का उल्लेख अवश्य करता है (५ वाँ शि० ले०) जो कुछ आन्तरिक स्वतन्त्रता का उपभोग करती होंगी, परन्तु सारे ही साम्राज्य में सम्राट् का प्रत्यक्ष नियन्त्रण था। अशोक ने आटविक जातियों को सम्बोधित करते हुए अपनी शक्ति का जिस प्रकार उल्लेख किया है उससे लगता है कि वह अपने साम्राज्य में विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों को सहन नहीं करता था। उसका साम्राज्य बहुत से प्रांतों में बँटा हुआ था जिनके कुछ नगर स्वर्णगिरि, इसिला (दक्षिणी ल० शि० ले०) समापा, तोसाली, तक्षशिला, उज्जैनी (कलिंग के पृथक् शि० ले०) आदि अभिलेखों में उल्लिखित हैं। इनमें स्पष्टतः ज्यादातर नगर प्रान्तीय राजधानियाँ और वहाँ राजकुमार लोग 'वायसराय' के रूप में नियुक्त थे। साम्राज्य की केन्द्रीय राजधानी पाटलिपुत्र थी (दे० ५ वाँ शि० ले० टि० ३)।

उन पर मनन करने को कहा। इसको वह 'समवाय' आदर्श बताता है (१२वां शि० लें०)। अपने अभिलेखों में वह सर्वत्र सभी सम्प्रदायों के हित सुख की कामना करता है। उसने बौद्ध होने के बावजूद आजीवकों को गुफाएँ दान दीं तथा ब्राह्मणों व निग्रन्थों आदि के हित का ध्यान रखने के लिए अपने धर्म महामात्रों को आदेश दिये (७वां स्त० लें०)।

धंम प्रचार के उपाय—अशोक ने अपने धंम को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न किये। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक की धारणा है कि उसने ब्राह्मी लिपि का आविष्कार ही इसी उद्देश्य से कराया था जिससे वह अपने धंम के आदर्शों को चिरस्थायी करा सके और जनता के कम-से-कम एक वर्ग—राजकर्मचारियों व भिक्षुओं आदि—को इस लिपि को पढ़ा कर इसके माध्यम से अपना संदेश जनता तक पहुँचा सके। आजकल यह धारणा सर्व-स्वीकृत सी हो गई है कि उसने अपने लेख आम जनता के लिए लिखवाये थे, इसलिए उसके पूर्व भी भारत के लोग ब्राह्मी से परिचित रहे होंगे। परन्तु यह तर्क गलत है। अगर अशोक यह समझता कि भारत के सामान्यजन ब्राह्मी पढ़ सकते हैं तो वह इस लिपि के साथ आम जनता की भाषा भी प्रयुक्त करता जैसा कि उसने पश्चिमोत्तर भारत में यूनानी लिपि व एरेमाइक भाषाओं और लिपियों का प्रयोग करते समय किया। लेकिन भारत के शेष सभी भागों में वह ब्राह्मी लिपि के लेखों में मागधी प्राकृत का बहुत ही मामूली अन्तरों के साथ प्रयोग करता है। स्पष्ट है कि इस भाषा को सभी प्रदेशों के भारतीय नहीं समझ पाते होंगे। उदाहरण के लिए तत्कालीन मैसूर वासी जनता निश्चय ही द्रविड बोलियाँ बोलती होंगी। अतः निष्कर्ष स्पष्ट है कि उसके लेख आम जनता के लिए नहीं, मैसूर के उन बौद्ध धर्म प्रचारकों, राजकर्मचारियों आदि के लिए थे जो राज-भाषा के साथ नवीन आविष्कृत लिपि सीख रहे थे। अशोक के युग में ब्राह्मी लिपि का समस्त भारत में एक सा रूप भी इस बात का प्रमाण है कि इसका आविष्कार तभी हुआ था। अगर इसका प्रचलन अशोक से पाँच-सात सौ वर्ष पूर्व से होता तो अशोक के समय तक इसके अनेक प्रादेशिक रूप हो गये होते। इसलिए हमें यह निश्चित सा लगता है कि अशोक ने ही ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कराया था और इसकी सहायता से अपने धंम का प्रचार किया (दे० अध्याय १ का परिशिष्ट)।

अशोक ने अपने पूरे साम्राज्य की शक्ति को धंम प्रचार में लगाया। इसे वह भेरिघोष (युद्ध घोष) के स्थान पर धर्मघोष कहता है (४ था शि० लें०)। उसने पूर्व-गामी राजाओं में प्रचलित विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएं प्रारम्भ कीं (८ वां शि० लें०), सामान्य मंगलोत्सवों के स्थान पर धर्म-मंगलों का प्रचार किया, तत्कालीन युग में प्रचलित सामान्य समाजों के स्थान पर धर्म समाजों को प्रोत्साहित किया (१ ला० शि० लें० ७ वां स्त० लें०) व पुण्य करने पर मिलने वाले स्वर्गीय सुखों की ओर जनता को उन्मुख करने के लिए इन सुखों के दृश्यों को विमानों में दिख-

प्रशासन व न्याय-व्यवस्था के बहुत से क्षेत्रों में अशोक ने नये प्रयोग किये। इन प्रयोगों व उनसे सम्बन्धित पदाधिकारियों—महामात्रों (६ वां शि० ले० व अन्य कई ले), धर्ममहामात्रों, राजुकों (४ था स्त० ले० ; ७वां स्त० ले०) स्त्र्यध्यक्ष महामात्रों, (१२वां शि० ले०) व्रजभूमिकों (१३वां शि० ले०), अन्तःमहामात्रों, युक्तों (३रा शि० ले०) प्रादेशिकों (३रा शि० ले०) आदि का काफी विस्तृत उल्लेख उसके अभिलेखों में मिलता है। हमने इनका विस्तृत अध्ययन पीछे अभिलेखों के अन्त में प्रदत्त टिप्पणियों में किया है। उसकी परिषद् के लिए दे० ६ठा शि० ले०, पदाधिकारियों के पञ्चवर्षीय दौरों व अनुसंधानों के लिए दे० ३रा शि० ले०, दण्ड-समता व व्यवहार-समता की स्थापना के लिए दे० ४था स्त० ले०, न्याय-व्यवस्था में नये प्रयोगों के लिए देखें ४था स्त० ले० व ५वां शि० ले०। कर-व्यवस्था पर उसके लेख कम प्रकाश देते हैं, परन्तु रूम्मिनदेई स्त० ले० में 'बलि' नामक कर के घटाये जाने का उल्लेख है।

अशोक समस्त प्रजा को अपनी सन्तान मानता था (सव मुनिसा में पजा)। उसने प्रजा के कल्याण के लिए अनेक उपाय किये जिनके लिए उसने बौद्ध धर्म से प्रेरणा ली। उसने मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की (२रा शि० ले०), मार्गों में जगह-जगह छायादार पेड़ लगवाये, जलशालाएँ बनवाईं, आम्रवाटिकाएँ लगवाईं ; तथा आधे-आधे कोस पर कुएँ खुदवाये (७वां स्त० ले०)। यह सब कार्य उसने धंम की अभिवृद्धि के हेतु धंम पराक्रम के रूप में किये थे।

अशोक के बौद्ध होने के प्रमाण—अब इस बात में कोई शंका नहीं की जा सकती कि अशोक व्यक्तिगत रूप से बौद्ध था। भाब्रु शिलाफलक-लेख में वह बुद्ध, धर्म व संघ में अपनी श्रद्धा बताता है एवं कुछ बौद्ध धर्मग्रन्थों (धंम पलियायों) के ऊपर मनन करने को कहता है, अहरौरा ल० शि० ले० में बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करने का उल्लेख करता है, निगालीसागर स्त० ले० में कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दोबारा बनवाने व उसकी यात्रा करने का उल्लेख करता है, अष्टम शि० ले० में सम्बोधि की यात्रा करने का उल्लेख करता है। प्रयाग, सारनाथ व साञ्ची संघभेद-लेखों में बौद्ध संघ के भेद दूर करने के प्रयास का वर्णन करता है, तथा अपने मास्की लघु शि० ले० में अपने को 'बुद्ध शाक्य' कहता है।

धंम की परिकल्पना—लेकिन अशोक ने आम जनता में जिस धंम का प्रचार किया व बौद्ध धर्म का वह रूप था जिसे स्वीकृत करने में अधिकतर सामान्य जनों को संकोच नहीं होता। इस 'धंम' का सकारात्मक पक्ष २रे शि० ले० व ७वें स्त० ले० आदि में मिलता है और निषेधात्मक पक्ष ३रे शि० ले०, ७वें शि० ले० व ७वें स्त० लेख में। भाब्रु शिलाफलक-लेख में बताये गये धंम पलियायों के अध्ययन से भी यह ज्ञात हो सकता है कि अशोक बौद्ध धर्म के किस रूप को जनता में प्रचारित करना चाहता था (दे०, सम्बन्धित टि०)। इसको लोकप्रिय बनाने के लिए उसने किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध प्रचार नहीं किया वरन् सभी सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को सुनने व

उन पर मनन करने को कहा। इसको वह 'समवाय' आदर्श बताता है (१२वां शि० ले०)। अपने अभिलेखों में वह सर्वत्र सभी सम्प्रदायों के हित सुख की कामना करता है। उसने बौद्ध होने के बावजूद आजीवकों को गुफाएँ दान दीं तथा ब्राह्मणों व निग्रन्थों आदि के हित का ध्यान रखने के लिए अपने धर्म महामात्रों को आदेश दिये (७वां स्त० ले०)।

धंम प्रचार के उपाय—अशोक ने अपने धंम को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न किये। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक की धारणा है कि उसने ब्राह्मी लिपि का आविष्कार ही इसी उद्देश्य से कराया था जिससे वह अपने धंम के आदर्शों को चिरस्थायी करा सके और जनता के कम-से-कम एक वर्ग—राजकर्मचारियों व भिक्षुओं आदि—को इस लिपि को पढ़ा कर इसके माध्यम से अपना संदेश जनता तक पहुँचा सके। आजकल यह धारणा सर्व-स्वीकृत सी हो गई है कि उसने अपने लेख आम जनता के लिए लिखवाये थे, इसलिए उसके पूर्व भी भारत के लोग ब्राह्मी से परिचित रहे होंगे। परन्तु यह तर्क गलत है। अगर अशोक यह समझता कि भारत के सामान्यजन ब्राह्मी पढ़ सकते हैं तो वह इस लिपि के साथ आम जनता की भाषा भी प्रयुक्त करता जैसा कि उसने पश्चिमोत्तर भारत में यूनानी लिपि व एरेमाइक भाषाओं और लिपियों का प्रयोग करते समय किया। लेकिन भारत के शेष सभी भागों में वह ब्राह्मी लिपि के लेखों में मागधी प्राकृत का बहुत ही मामूली अन्तरों के साथ प्रयोग करता है। स्पष्ट है कि इस भाषा को सभी प्रदेशों के भारतीय नहीं समझ पाते होंगे। उदाहरण के लिए तत्कालीन मैसूर वासी जनता निश्चय ही द्रविड बोलियाँ बोलती होंगी। अतः निष्कर्ष स्पष्ट है कि उसके लेख आम जनता के लिए नहीं, मैसूर के उन बौद्ध धर्म प्रचारकों, राजकर्मचारियों आदि के लिए थे जो राज-भाषा के साथ नवीन आविष्कृत लिपि सीख रहे थे। अशोक के युग में ब्राह्मी लिपि का समस्त भारत में एक सा रूप भी इस बात का प्रमाण है कि इसका आविष्कार तभी हुआ था। अगर इसका प्रचलन अशोक से पाँच-सात सौ वर्ष पूर्व से होता तो अशोक के समय तक इसके अनेक प्रादेशिक रूप हो गये होते। इसलिए हमें यह निश्चित सा लगता है कि अशोक ने ही ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कराया था और इसकी सहायता से अपने धंम का प्रचार किया (दे० अध्याय १ का परिशिष्ट)।

अशोक ने अपने पूरे साम्राज्य की शक्ति को धंम प्रचार में लगाया। इसे वह भेरिघोष (युद्ध घोष) के स्थान पर धर्मघोष कहता है (४ था शि० ले०)। उसने पूर्व-गामी राजाओं में प्रचलित विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएं प्रारम्भ कीं (८ वां शि० ले०), सामान्य मंगलोत्सवों के स्थान पर धर्म-मंगलों का प्रचार किया, तत्कालीन युग में प्रचलित सामान्य समाजों के स्थान पर धर्म समाजों को प्रोत्साहित किया (१ ला० शि० ले० ७ वां स्त० ले०) व पुण्य करने पर मिलने वाले स्वर्गीय सुखों की ओर जनता को उन्मुख करने के लिए इन सुखों के दृश्यों को विमानों में दिख-

प्रशासन व न्याय-व्यवस्था के बहुत से क्षेत्रों में अशोक ने नये प्रयोग किये। इन प्रयोगों व उनसे सम्बन्धित पदाधिकारियों—महामात्रों (६ वां शि० ले० व अन्य कई ले), धर्ममहामात्रों, राजुकों (४ था स्त० ले० ; ७वां स्त० ले०) स्त्र्यध्यक्ष महामात्रों, (१२वां शि० ले०) व्रजभूमिकों (१३वां शि० ले०), अन्तःमहामात्रों, युक्तों (३रा शि० ले०) प्रादेशिकों (३रा शि० ले०) आदि का काफी विस्तृत उल्लेख उसके अभिलेखों में मिलता है। हमने इनका विस्तृत अध्ययन पीछे अभिलेखों के अन्त में प्रदत्त टिप्पणियों में किया है। उसकी परिषद् के लिए दे० ६ठा शि० ले०, पदाधिकारियों के पञ्चवर्षीय दौरों व अनुसंधानों के लिए दे० ३रा शि० ले०, दण्ड-समता व व्यवहार-समता की स्थापना के लिए दे० ४था स्त० ले०, न्याय-व्यवस्था में नये प्रयोगों के लिए देखें ४था स्त० ले० व ५वां शि० ले०। कर-व्यवस्था पर उसके लेख कम प्रकाश देते हैं, परन्तु रूम्मिनदेई स्त० ले० में 'बलि' नामक कर के घटाये जाने का उल्लेख है।

अशोक समस्त प्रजा को अपनी सन्तान मानता था (सव मुनिसा में पजा)। उसने प्रजा के कल्याण के लिए अनेक उपाय किये जिनके लिए उसने बौद्ध धर्म से प्रेरणा ली। उसने मनुष्यों और पशुओं की चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की (२रा शि० ले०), मार्गों में जगह-जगह छायादार पेड़ लगवाये, जलशालाएँ बनवाईं, आम्रवाटिकाएँ लगवाईं ; तथा आधे-आधे कोस पर कुएँ खुदवाये (७वां स्त० ले०)। यह सब कार्य उसने धंम की अभिवृद्धि के हेतु धंम पराक्रम के रूप में किये थे।

अशोक के बौद्ध होने के प्रमाण—अब इस बात में कोई शंका नहीं की जा सकती कि अशोक व्यक्तिगत रूप से बौद्ध था। भाब्रु शिलाफलक-लेख में वह बुद्ध, धर्म व संघ में अपनी श्रद्धा बताता है एवं कुछ बौद्ध धर्मग्रन्थों (धंम पलियायों) के ऊपर मनन करने को कहता है, अहरौरा ल० शि० ले० में बुद्ध के अवशेषों को स्थापित करने का उल्लेख करता है, निगालीसागर स्त० ले० में कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को दोबारा बनवाने व उसकी यात्रा करने का उल्लेख करता है, अष्टम शि० ले० में सम्बोधि की यात्रा करने का उल्लेख करता है। प्रयाग, सारनाथ व साञ्ची संघभेद-लेखों में बौद्ध संघ के भेद दूर करने के प्रयास का वर्णन करता है, तथा अपने मास्की लघु शि० ले० में अपने को 'बुद्ध शाक्य' कहता है।

धंम की परिकल्पना—लेकिन अशोक ने आम जनता में जिस धंम का प्रचार किया व बौद्ध धर्म का वह रूप था जिसे स्वीकृत करने में अधिकतर सामान्य जनों को संकोच नहीं होता। इस 'धंम' का सकारात्मक पक्ष २रे शि० ले० व ७वें स्त० ले० आदि में मिलता है और निषेधात्मक पक्ष ३रे शि० ले०, ७वें शि० ले० व ७वें स्त० लेख में। भाब्रु शिलाफलक-लेख में बताये गये धंम पलियायों के अध्ययन से भी यह ज्ञात हो सकता है कि अशोक बौद्ध धर्म के किस रूप को जनता में प्रचारित करना चाहता था (दे०, सम्बन्धित टि०)। इसको लोकप्रिय बनाने के लिए उसने किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध प्रचार नहीं किया वरन् सभी सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को सुनने व

उन पर मनन करने को कहा । इसको वह 'समवाय' आदर्श बताता है (१२वां शि० ले०) । अपने अभिलेखों में वह सर्वत्र सभी सम्प्रदायों के हित सुख की कामना करता है । उसने बौद्ध होने के बावजूद आजीवकों को गुफाएँ दान दीं तथा ब्राह्मणों व निग्रन्थों आदि के हित का ध्यान रखने के लिए अपने धर्म महामात्रों को आदेश दिये (७वां स्त० ले०) ।

धंम प्रचार के उपाय—अशोक ने अपने धंम को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न किये । प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक की धारणा है कि उसने ब्राह्मी लिपि का आविष्कार ही इसी उद्देश्य से कराया था जिससे वह अपने धंम के आदर्शों को चिरस्थायी करा सके और जनता के कम-से-कम एक वर्ग—राजकर्मचारियों व भिक्षुओं आदि—को इस लिपि को पढ़ा कर इसके माध्यम से अपना संदेश जनता तक पहुँचा सके । आजकल यह धारणा सर्व-स्वीकृत सी हो गई है कि उसने अपने लेख आम जनता के लिए लिखवाये थे, इसलिए उसके पूर्व भी भारत के लोग ब्राह्मी से परिचित रहे होंगे । परन्तु यह तर्क गलत है । अगर अशोक यह समझता कि भारत के सामान्यजन ब्राह्मी पढ़ सकते हैं तो वह इस लिपि के साथ आम जनता की भाषा भी प्रयुक्त करता जैसा कि उसने पश्चिमोत्तर भारत में यूनानी लिपि व एरेमाइक भाषाओं और लिपियों का प्रयोग करते समय किया । लेकिन भारत के शेष सभी भागों में वह ब्राह्मी लिपि के लेखों में मागधी प्राकृत का बहुत ही मामूली अन्तरों के साथ प्रयोग करता है । स्पष्ट है कि इस भाषा को सभी प्रदेशों के भारतीय नहीं समझ पाते होंगे । उदाहरण के लिए तत्कालीन मैसूर वासी जनता निश्चय ही द्रविड बोलियाँ बोलती होंगी । अतः निष्कर्ष स्पष्ट है कि उसके लेख आम जनता के लिए नहीं, मैसूर के उन बौद्ध धर्म प्रचारकों, राजकर्मचारियों आदि के लिए थे जो राजभाषा के साथ नवीन आविष्कृत लिपि सीख रहे थे । अशोक के युग में ब्राह्मी लिपि का समस्त भारत में एक सा रूप भी इस बात का प्रमाण है कि इसका आविष्कार तभी हुआ था । अगर इसका प्रचलन अशोक से पाँच-सात सौ वर्ष पूर्व से होता तो अशोक के समय तक इसके अनेक प्रादेशिक रूप हो गये होते । इसलिए हमें यह निश्चित सा लगता है कि अशोक ने ही ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कराया था और इसकी सहायता से अपने धंम का प्रचार किया (दे० अध्याय १ का परिशिष्ट) ।

अशोक ने अपने पूरे साम्राज्य की शक्ति को धंम प्रचार में लगाया । इसे वह भेरिघोष (युद्ध घोष) के स्थान पर धर्मघोष कहता है (४ था शि० ले०) । उसने पूर्वगामी राजाओं में प्रचलित विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएं प्रारम्भ कीं (८ वां शि० ले०), सामान्य मंगलोत्सवों के स्थान पर धर्म-मंगलों का प्रचार किया, तत्कालीन युग में प्रचलित सामान्य समाजों के स्थान पर धर्म समाजों को प्रोत्साहित किया (१ ला० शि० ले० ७ वां स्त० ले०) व पुण्य करने पर मिलने वाले स्वर्गीय सुखों की ओर जनता को उन्मुख करने के लिए इन सुखों के दृश्यों को विमानों में दिख-

लाना शुरू किया (४ था शि० ले०)। उसने आम जनता में अहिंसा का प्रचार करने के लिए स्वयं मांस भक्षण कम कर दिया (१ ला शि० ले०), और अनेक अवसरों पर अनुसूचित पशुओं की हत्या का सर्वथा निषेध कर दिया (५ वां स्त० ले०)।

बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अशोक के कार्य—अशोक के 'धंम' प्रचार के सभी उपायों से बौद्ध धर्म का परोक्ष रूप से प्रभाव बढ़ा। परन्तु विशेष रूप से उसने बौद्ध धर्म के लिए क्या-क्या कार्य किए इनका वर्णन अभिलेखों में नहीं है। फिर भी इतना निश्चित रूप से ज्ञात है उसने (१) बौद्ध संघ के मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया (संघ-भेद-लेख)। इससे यह साहित्य परम्परा कि उसने एक समागम आयोजित करवा कर सब लोभी तथा श्रद्धाहीन भिक्षुओं को संघ से निष्कासित करवा दिया था और तत्पश्चात् तृतीय संगीति बुलाई थी, सही प्रतीत होने लगती है। (२) अशोक ने कुछ बौद्ध ग्रन्थों का प्रचार किया (भाब्रु-लेख के धर्म-पर्याय)। (३) उसने बुद्ध के देहावशेषों पर स्तूप बनवाया (अहरौरा ल० शि० ले०)। इससे यह साहित्यिक परम्परा कम-से-कम अंशतः समर्थित होती है कि उसने बुद्ध के देहावशेषों पर ८४,००० स्तूप बनवाए थे। (४) उसने स्तम्भों और उन पर बनी मूर्तियों और स्तूपों के रूप में बौद्ध प्रस्तर-कला का श्री गणेश किया और बौद्ध प्रतीकों को लोकप्रिय बनाया।

अशोक के विषय में बौद्ध साहित्य में कहा गया है कि उसने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भारत के विभिन्न भागों में व विदेशों में धर्म-प्रचारक भेजे थे। इस बात का उल्लेख उसके अभिलेखों में तो नहीं है परन्तु वह अपने पड़ोसी देशों में—मय यूनानी राज्यों के—धंम विजय की नीति की सफलता का दावा करता है (२ रा तथा १३ वां शि० ले०)। उसने जिन लोगों के माध्यम से अपने आदर्श वहां प्रचारित करने का प्रयास किया होगा उनमें वे धर्म प्रचारक भी रहे होंगे जिनकी चर्चा साहित्य में है। जो भी हो अशोक के अभिलेख मिस्र व पश्चिमी एशिया के यूनानी राज्यों और राजाओं का उल्लेख करने वाले अकेले भारतीय लेख हैं।

लिप्यात्मक, भाषात्मक व साहित्यिक महत्त्व—अशोक के अभिलेख बहुसंख्यक एवं भारत के प्राचीनतम अभिलेख होने के कारण तत्कालीन भारत की लिप्यात्मक, भाषात्मक एवं साहित्यिक स्थिति पर रोचक प्रकाश प्रदान करते हैं। अशोक ने अपने पश्चिमोत्तर प्रदेशों के अभिलेखों में यूनानी, एरेमाइक एवं खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग किया। उसके शहबाजगढ़ी व मानसेहरा अभिलेख खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम विस्तृत लेख हैं। शेष समस्त भारत में उसने ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया। इस लिपि का रूप सर्वत्र समान है जिससे प्रमाणित है कि इसे स्वयं अशोक ने प्रचारित किया था। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, अगर इसका प्रचलन अशोक के कुछ सौ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया होता तो अशोक के काल तक विभिन्न प्रदेशों में इसका रूप उसी प्रकार बदलता हुआ मिलता जैसा गुप्तकाल में मिलता है। उसके अभिलेखों का

साहित्यिक महत्त्व भी कई दृष्टि से है। एक, इनसे अशोक के काल में बौद्ध त्रिपिटक के विकास की अवस्था का कुछ ज्ञान होता है (दे०, भाब्रु शिला फलक-लेख की टि० ६)। दूसरे, अशोक के अभिलेखों की भाषा में पालि त्रिपिटक की भाषा व वाक्य-विन्यास आदि का गहरा प्रभाव मिलता है। हमने ऐसे कुछ वाक्यों की ओर टिप्पणियों में ध्यान दिलाया है। विस्तृत विवेचन के लिए दे०, बरुआ, अशोक एण्ड हिज इन्स्क्रिप्शन्स्, २, पृ० ३४० अ०। तीसरे, अशोक के अभिलेख बौद्धेतर साहित्य के अध्ययन के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ, उसके द्वारा प्रयुक्त 'परिस्रवे', 'अपरिस्रवे', (१० वां शि० ले०) तथा 'आसिनवे' (२ रा स्त० ले०) शब्द बौद्ध न हो कर जैन साहित्य से लिए गए लगते हैं। अबध्य पशुओं की उसकी सूची (५ वां स्त० लेख) बौधायन० और वशिष्ठ० से मेल खाती है, उसका 'समवाय' सिद्धान्त भारत में लगभग सभी सम्प्रदायों में आदर्श माना गया है, उसकी 'देवानांप्रिय' उपाधि ब्राह्मण साहित्य में चर्चित है (१ ला शि० ले०), तथा उसके द्वारा तिष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों को प्रदत्त महत्त्व कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से स्पष्ट होता है आदि (विस्तृत विवेचन के लिए दे०, बरुआ, पूर्वो०)। इसी प्रकार अशोक के अभिलेख तत्कालीन भारत के भाषात्मक मानचित्र को समझने में भी अमूल्य सहायता प्रदान करते हैं। इस विषय में हमने कुछ चर्चा प्रथम अध्याय में की है।